

प्राचीन भारतीय शिक्षा केन्द्र एवं उनका योगदान

अतुल कुमार सिंह

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, सस्कृति एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में शिक्षा को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था। व्यक्ति को अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों के विधि पूर्वक निर्वाह के लिये शिक्षा के महत्व को सदैव स्वीकार किया गया है, इसीलिए प्राचीन भारत में अनेक प्रसिद्ध शिक्षण संस्थाओं का आविर्भाव हुआ, जिसमें प्राचीन भारत के अनेक विश्वविद्यालय एवं शिक्षण संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान था, जिन्होंने समय-समय पर भारतीय शिक्षा प्रणाली को प्रभावित किया। जिसेसे भारतीय शाख सम्पूर्ण संसार में फैल गयी एवं भारतीय शिक्षण संस्थाओं ने सम्पूर्ण विश्व के छात्रों को आकर्षित किया एवं विदेशों से भी छात्र शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से इन विश्वविद्यालयों में आने लगे।

नालन्दा विश्वविद्यालय

नालन्दा पटना से 50 मील दक्षिण में बड़गाँव नामक स्थल पर स्थित था। बुद्ध के प्रमुख शिष्य (शारिपुत्र) का जन्म स्थान होने के कारण यह अत्यंत प्राचीन काल से बौद्ध धर्म का केन्द्र था। विद्या केन्द्र के रूप में इसका इतिहास 410 ई० के बाद किसी समय प्रारम्भ होता है, क्योंकि फाह्यान जिसने 410 ई० में नालन्दा की यात्रा की, ने नालन्दा का वर्णन इस रूप में नहीं किया है। गुप्त शासकों की संरक्षणवादी नीति तथा धार्मिक साहित्य के काल-नालन्दा में बिहार बनवाया और यही बाद में प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हुआ। शासकों तथा धनी व्यक्तियों, जो कि भारत के ही नहीं बल्कि भारत से बाहर के भी होते थे, ने इसे अनुदान दिए और इस प्रकार इसके अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र का उद्घाटन हुआ। उत्खननों से पता चलता है कि नालन्दा विश्वविद्यालय कम से कम आधे वर्गमील क्षेत्र में फैला था। जिसमें कम से कम आठ विशाल व्याख्यान मंदिर (कालेज) थे, जो कि विविध संरक्षकों के द्वारा निर्मित करवाये गये थे; ऐसा ही संरक्षक श्री विजय का शासक बालपुत्र देव था। खुदाई से पता चलता है कि उपर्युक्त व्याख्यान मंदिर क्रमबद्ध पक्ति में बने थे और प्रांगण के माध्यम से एक दूसरे से सम्बद्ध थे।

इत्सिंग (675 ई० में) के अनुसार (200 गाँव) दान में विश्वविद्यालय को मिले थे, जिनसे विद्यार्थियों के निःशुल्क भोजन, आवास तथा वस्त्र की व्यवस्था की जाती थी। सभी प्रकार के प्रबन्ध प्रधान भिक्षु गृहारथेवर के अधीन थे जिसको सहायता के लिए दो परिषदें थीं एक शिक्षा से सम्बन्धित तथा दूसरी शासन से सम्बन्धित। चीनी यात्री इत्सिंग जो 675 ई० में भारत आया था, के अनुसार उस समय नालन्दा में छात्रों की संख्या 3000 थी किन्तु ह्वीली के अनुसार सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में छात्रों की संख्या 10,000 थी।

विभिन्न विज्ञानों के अन्वेषण के लिए विद्यार्थियों के लाभार्थ नालन्दा में धर्मगंज नामक एक विशाल पुस्तकालय था, जो कि तीन भागों में विभाजित था- 'रत्नसागर', रत्नोदधि, रत्नरंजक यह पुस्तकालय महायान साहित्य का तो जैसे सागर ही था लेकिन इसके अलावा

हीनयान साहित्य, वेद-वेदांत, दर्शन, शब्दविद्या, चिकित्सा विज्ञान आदि के ग्रन्थ भी प्रमुखता से उपलब्ध थे।

पाठ्यक्रम में पालिभाषा का अध्ययन अनिवार्य था। महायान हीनयान साहित्य के अतिरिक्त हिन्दू-दर्शन,सांख्य आदि भी पढ़ाये जाते थे। धार्मिक साहित्य के साथ-साथ व्याकरण, चिकित्सा, न्याय भी शिक्षा के विषय थे। शास्त्रार्थ को ध्यान में रखते हुए तर्कशास्त्र तथा व्याख्यानों का अध्ययन भी शामिल था। छात्रों से अपेक्षा की जाती थी कि वे 'अतिथि व्याख्याताओं' से विवाद करेंगे।

नालन्दा के वैश्विक और उदात्त-चरित्र की झलक इससे सम्बद्ध महान अध्यापकों में देखी जा सकती है; जैसे धर्मपाल जो कि शीलभद्र का पूर्ववर्ती था, मुख्य भिक्षु रहा, कांची का एक कुलीन तमिल था तथा शील भद्र जो कि ह्वेसांग का गुरु था संभवतः आसाम का परिवर्तित ब्राह्मण था। नालन्दा के अन्य आचार्यों में चंद्रपाल, गुणमति, प्रभामित्र, जिनमित्र आदि थे। आचार्यों की विद्वता की प्रसिद्धि, विश्वविद्यालय का आवासीय रूप विद्यार्थियों द्वारा 'बौद्धिक वर्ग' को अपनी ओर आकर्षित करता था। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का लाभ उठाकर इसके विद्वानों ने आठवीं शताब्दी में तिब्बत में बौद्ध धर्म एवं संस्कृत के प्रचार के लिए भागीरथी प्रयास किया। उल्लेखनीय है कि तिब्बत के राजा खो-खो डेनमांग ने 744 ई० में नालन्दा के भिक्षु शांत रक्षित को बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ आमंत्रित किया।

ग्यारहवीं शताब्दी में पाल राजाओं द्वारा विक्रमशिला की ओर अधिक ध्यान देने के कारण संरक्षण और प्रोत्साहन के अभाव में इसका वैभव घटने लगा और 1203 ई० में यह बख्तियार खिलजी के आक्रमण का शिकार बना और इसका गौरव समाप्त हो गया।

बलभी विश्वविद्यालय

बलभी काठियावाड़ के पूर्वी किनारे पर बसा वला नामक स्थान के पास स्थित था। यह एक महत्वपूर्ण राज्य की राजधानी और व्यापारिक केन्द्र था किन्तु 7वीं शताब्दी में यह विद्या के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध थी। इत्सिंग लिखता है कि उत्तर भारत में नालन्दा ही वल्लभी की समता कर सकती थी। लेकिन चीनी यात्रियों ने यहाँ के शिक्षा सम्बन्धी कार्य-कलापों का सविस्तार विवरण नहीं दिया है। 640 ई० में यहाँ लगभग 100 बिहार थे जिनमें 6000 भिक्षु पढ़ते थे।

पाँचवीं शताब्दी के मध्य में स्थिरमति और गुणमति नामक प्रसिद्ध विद्वान इसी विश्वविद्यालय में थे।

वल्लभी में भी बौद्ध शिक्षा के अलावा और भी विषयों में शिक्षा दी जाती थी। गंगाघाटी से भी ब्राह्मण अपने पुत्रों को अध्ययन के लिए यहाँ भेजते थे। बलभी के स्नातकों को तत्कालीन शासन के ऊँचे पदों पर नियुक्त किया जाता था।

वलभी हीनयान बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। इसके अलावा, व्याकरण व्यवहारशास्त्र, गणित आदि की तथा साहित्य जैसे लौकिक विषयों की शिक्षा यहाँ दी जाती थी। विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वानों का नाम यहाँ भी नालन्दा की भाँति उत्तंग द्वारा

पर लिखा होता था। यहाँ विद्यार्थी दो या तीन वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करते थे। इस विश्वविद्यालय के आचार्यों द्वारा प्रशिक्षित होने के बाद ही विद्वानों को अपने सिद्धान्तों की सत्यपरता तथा अपनी बौद्धिकता का सही ज्ञान हो पाता था, जैसा कि ईत्सिंग के विवरण से पता चलता है। मैत्रक शासकों ने इसे उदारतापूर्वक दान दिये तथा उनके काल (480-715) में इसकी खूब उन्नति हुई। राजकीय संरक्षण के साथ-साथ विश्वविद्यालय को नगर के प्रसिद्ध व्यापारियों तथा व्यवसायियों से भी प्रभूत दान मिला।

आठवीं शताब्दी के अरब आक्रमण से विश्वविद्यालय की प्रगति कुछ काल के लिए अवरुद्ध हो गयी। किन्तु पुनः जब शान्ति स्थापित हुई तो मैत्रकों के उत्तराधिकारियों ने विश्वविद्यालय के संरक्षण एवं सहायता प्रदान की। बारहवीं शदी के अन्त तक शिक्षा केन्द्र के रूप में वलभी की ख्याति बनी तथा देश के विभिन्न भागों से विद्यार्थी ज्ञानार्जन के लिए यहाँ आते रहे।

विक्रमशिला

बिहार प्रान्त के भागलपुर जिले में स्थित विक्रमशिला नालंदा के समान ही एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त शिक्षा का केन्द्र रहा है। इसकी भौगोलिक स्थिति भागलपुर से 24 मील पूर्व की ओर पथरघाट नामक पहाड़ी पर है जिसकी पुष्टि यहीं से मिले खण्डहरों से होती है। विक्रमशिला के महाविहार की स्थापना पाल नरेश धर्मपाल (770-810 ई०) ने करवायी थी। यहाँ 160 विहार तथा व्याख्यान के लिए अनेक कक्ष बने हुए थे। धर्मपाल के उत्तराधिकारी तेरहवीं शताब्दी तक इसको संरक्षण प्रदान करते रहे।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय में छः महाविद्यालय थे। प्रत्येक में एक केन्द्रिय कक्ष तथा छह अध्यापक थे। प्रत्येक महाविद्यालय में एक प्रवेश द्वार होता था जिस पर द्वार पण्डित बैठते थे। द्वारपण्डित द्वारा परीक्षण किये जाने के बाद ही किसी विद्यार्थी का महाविद्यालय में प्रवेश सम्भव था।

आचार्य रत्नाकरशान्ति, वागीश्वर कीर्ति, नरोप, प्रज्ञाकरमति, रत्नव्रज तथा ज्ञानश्रीमित्र ऐसे ही द्वार पण्डित थे।

विश्वविद्यालय में अध्ययन के विशेष विषय व्याकरण, तर्कशास्त्र, मीमांसा तंत्र, विधिवाद आदि थे। आचार्यों में दीपंकर श्री ज्ञान का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है जो इस विश्वविद्यालय के कुलपति थे। वे हीनयान, महायान वैशेषिक तथा तर्कशास्त्र के विद्वान तथा तिब्बती बौद्ध धर्म के महान प्रचारक थे। 11वीं सदी में तिब्बती नरेश चनचुब के निमंत्रण पर वे तिब्बत जाकर बौद्ध धर्म के प्रचार का काम किये। तिब्बती स्रोत इन्हें 200 ग्रन्थों को रचने का श्रेय देते हैं। 12वीं सदी में अभयाकर गुप्त यहाँ के आचार्य थे। अन्य विद्वानों में ज्ञानपाद, वैरोनन, रक्षित जेतारी, रत्नाकर, शान्ति ज्ञानश्रीमित्र, रत्नवज्र, तथागत रक्षित आदि थे। लगभग 3000 विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे।

विश्वविद्यालय का प्रबन्ध चलाने के लिये मुख्य संघाध्यक्ष की देख-रेख में एक परिषद थी जिसके सदस्य विभिन्न प्रशासनिक कार्यों जैसे उपसंपदा प्रव्रज्जा, भोजन तथा आवास आदि की देख-रेख करते थे। शैक्षणिक व्यवस्था 6 द्वार पण्डितों की समिति द्वारा ही संचालित होती थी।

कालान्तर में विक्रमशिला की प्रशासनिक परिषद ही नालन्दा विश्वविद्यालय का भी कार्य देखने लगी। यहाँ स्नातकों को स्नातक होने के बाद दीक्षान्त समारोह में उपाधियों प्रदान की जाती थी। जिनका कुलाधिपति पाल राजा होता था। स्थानीय विशिष्ट विद्वानों की स्मृति सर्वदा ताजी बनाये रखने के लिए विहार के कक्ष की दीवारों पर उनके चित्र लगा दिये जाते थे, जैसे नागार्जुन और अतिश के चित्र लगाये गये थे।

1203 में बख्तियार खिलजी के नेतृत्व में यहाँ के विहारों को नष्ट कर दिया गया, उस समय विश्वविद्यालय के आचार्य श्री भद्र थे।

महत्वपूर्ण शैक्षिक केन्द्र :

कांची-दक्षिण भारत में पल्लववंशी शासकों के नेतृत्व में कांची एक महान शिक्षा का केन्द्र बन गया था। समुद्रगुप्त के शासन काल में इसकी प्रतिष्ठा थी। कालान्तर में यह पूर्वमध्ययुगीन दक्षिण भारत का एक अत्यन्त विशाल शक्तिशाली नगर बन गया, जहाँ अनेक आचार्य वैदिक साहित्य का अध्ययन कार्य किया करते थे।

कांची के शिक्षा केन्द्र का विकास विश्वविद्यालय के रूप में हुआ था। भारत के दक्षिण भाग के निवासियों के अतिरिक्त विभिन्न प्रदेशों के निवासी यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिये आते थे। महाकवि दण्डिन ने कांची के शरणाश्रय में ही रहकर अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। शूद्रक ने अपने नाटकों का प्रणयन यहीं पर किया था। भारवि भी संभवतः इसी युग में हुआ था। कदम्ब वंशी मयूरशर्मन ने कांची में ही शिक्षा ग्रहण की थी। वात्स्यायन तथा दिंगनाथ जैसे महान् विद्वान कांची विश्वविद्यालय में ही रहकर पढ़ते थे। वस्तुतः संस्कृत भाषा और साहित्य का उत्कर्ष कांची में अत्यंत तीव्र गति से हुआ।

धारा

यह मालवा के परमारों की राजधानी थी। पूर्वमध्य युग में यह नगर शिक्षा और ज्ञान का प्रधान केन्द्र बन गया। 'नवसाहसांकचरित' के रचयिता पद्मगुप्त परिमल ने यहीं रहकर अपनी रचनाएँ की। धनंजय, अमितगति, शोभन आदि विद्वान इसी समय के थे। मुंज (परमार शासक) के समय यह नगरी हिन्दू धर्म और शिक्षा का केन्द्र बन चुकी थी। राजा भोज द्वारा स्थापित 'भोजशाला' विश्वविद्यालय के रूप में विख्यात थी।

ओदन्तपुरी

ओदन्तपुरी का महाविद्यालय पाल राजाओं के राज्यकाल से पहले विद्यमान था। पाल राजाओं के समय वह विश्वविद्यालय बन गया। बौद्ध धर्म के तिब्बती विश्वकोष में यहाँ अनेक विद्वानों के नामों का उल्लेख है। श्री राज अतीश दीपंकर ने विक्रमशिला में कुलपति बनने के पूर्व इस विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी।

जगदलपुरी

पाल राजा राज्यपाल ने रामावती नाम की नयी राजधानी बनायी उसी के निकट जगदल ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना की। 11वीं शती में यह विश्वविद्यालय भी बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गया था। जगदल विश्वविद्यालय तंत्रयान शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था, जहाँ अनेक विद्वानों का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें विभूतिचन्द्र, दानशील आदि प्रसिद्ध तांत्रिक बौद्ध विद्वान थे।

प्राचीन विश्वविद्यालयों का योगदान :

छात्रों का प्रशासन में योगदान

इत्सिंग हमें बताता है कि इन विश्वविद्यालयों के स्नातकों की समाज में बहुत प्रतिष्ठा थी। यहाँ के स्नातकों को विभिन्न राज्यों में प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया जाता था। इसके निमित्त विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में धर्म के अतिरिक्त लौकिक विषय भी सम्मिलित किये गये थे। इस प्रकार प्रशासनिक योगदान के रूप में विश्वविद्यालयों ने प्रशिक्षित प्रशासनिक वर्ग के निर्माण में योगदान दिया।

सहिष्णुता तथा समन्वय

इन विश्वविद्यालयों में सभी धर्मों की शिक्षा दी जाती थी। इसलिए यहां शिक्षा प्राप्त व्यक्ति धार्मिक दृष्टि से सहिष्णु होता था तथा इसी भावना का प्रचार करता था। वैसे तो नालंदा बौद्ध धर्म का केन्द्र था लेकिन यहाँ अन्य धर्मों की भी शिक्षा दी जाती थी। वलभी

विश्वविद्यालय तो अपनी सहिष्णुता तथा बौद्धिक स्वतन्त्रता के लिए विख्यात था। इन विश्वविद्यालयों में देश के विभिन्न क्षेत्रों से विद्यार्थी पढ़ने आया करते थे। साथ-साथ रहकर पढ़ने से उनमें समन्वयकारी दृष्टि का विकास होता था तथा वे क्षेत्रीय संकीर्णता से ऊपर उठते थे।

सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार

नालंदा में चीन, मंगोलिया, तिब्बत, कोरिया, मध्य एशिया आदि से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। ह्वेनसांग ने यहाँ 10 वर्ष रहकर शिक्षा ग्रहण की थी। इसके अलावा नालंदा में तिब्बती भाषा के अध्ययन की व्यवस्था थी। 12वीं शताब्दी में विक्रमशिला में तीन हजार विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे जिनमें अधिकांश तिब्बती थे। इन विश्वविद्यालयों के विद्वानों का सबसे बड़ा योगदान है तिब्बत में बौद्ध धर्म एवं संस्कृति का प्रसार 18वीं शदी से नालंदा के विद्वान तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ जाने लगे। प्रथम प्रचारकों में चन्द्रगोमिन उल्लेखनीय हैं। नालंदा के दूसरे विद्वान शांतरक्षित थे। विक्रमशिला के कुलपति दीपकर श्री ज्ञान तिब्बती नरेश चनचुब के निमंत्रण पर तिब्बत गये थे, 11वीं सदी में शांतरक्षित के निर्देशन में पहला बौद्ध मठ तिब्बत में बना था।

लौकिक एवं आध्यात्मिक साहित्य

इन विश्वविद्यालयों के विद्वान मात्र अच्छे शिक्षक ही नहीं थे, अपितु विभिन्न ग्रन्थों के रचयिता भी थे। इनकी रचनाओं का समकालीन विश्व में बहुत नाम था। विक्रमशिला के अभयांकर गुप्त (तंत्रवाद के पण्डित) ने तिब्बती तथा संस्कृत भाषा में कई ग्रन्थ लिखे। इसी प्रकार नालंदा के कई ऐसे विद्वान थे जिन्होंने उच्चकोटि के ग्रन्थों का प्रणयन किया था, जैसे- शीलभद्र, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र तथा ज्ञानचन्द्र।

सामाजिक व्यवस्था का नियमन

समाज पर धर्म का नियंत्रण था तथा धार्मिक शिक्षा इन विश्वविद्यालयों में मिलती थी। यहाँ शिक्षित व्यक्ति अपने धर्म-ज्ञान के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था के नियमन में महत्वपूर्ण दायित्व निभाते थे। इसके अलावा इन्होंने समाज में शिक्षा के महत्त्व की प्रतिष्ठा की तथा व्यक्ति के चारित्रिक विकास में योगदान किया।

पाठ्यक्रम

1. व्याकरण, साहित्य तथा तर्कशास्त्र के अध्ययन पर आवश्यकता से अधिक जोर।
2. इतिहास, गणित, खगोलविद्या का अध्ययन अपेक्षाकृत उपेक्षित। संगीत चित्रकला आदि ललित कलायें सामान्य पाठ्यक्रम का विषय नहीं।
3. विद्वानों की सारी शक्ति प्राचीन ज्ञान विज्ञान को ही सुरक्षित करने में लगी रही। इससे रचनात्मक प्रतिभा का हनन हुआ। ये विश्वविद्यालय ऐसे विद्वानों के वर्ग को तैयार करने में असफल रहे जो प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की आलोचनात्मक समीक्षा करके नवीन मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर सकें।
4. शिक्षा के पाठ्यक्रम में लौकिक विषयों की बजाय धार्मिक विषयों की प्रधानता।

तथापि इन आलोच्य बिन्दुओं के बावजूद इन विश्वविद्यालयों का महत्त्व और योगदान कदाचित कम नहीं हो जाता है। इन्होंने शैक्षिक अनुशासन एवं बौद्धिक विकास का जो कार्य किया तथा इसने जो सामाजिक प्रभाव डाला वह अविस्मरणीय है।

उपसंहार

प्राचीन भारतीय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करना था। भारतीय शास्त्रों में चरित्र को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। चरित्र व्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण आभूषण होता था, चरित्र एवं आचरण से हीन व्यक्ति की सर्वत्र निंदा की गयी है, एवं चरित्रवानों को श्रेष्ठ की संज्ञा दी जाती थी। व्यक्ति में इन सभी प्रकार के नैतिक गुणों के उदय का कार्य ही प्राचीन भारतीय शिक्षा केन्द्रों का महत्वपूर्ण विषय था। जिससे व्यक्ति अपने समाज एवं संस्कृति को विश्व के उच्चतम शिखर तक पहुँचा सके, तथा भारतीय शिक्षा का विकास सम्पूर्ण विश्व में हो सके।

‘विद्याददाति विनयं विनमाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्द्वन्माप्नोति: धनाधर्म: तत: सुखम्॥’

संदर्भ

1. घोष, अमलानंद – नालंदा।
2. बाशम, ए0ए0 – द वंडर दैट वॉट इंडिया (कलकत्ता विश्वविद्यालय)।
3. रायचौधरी, एच0सी0 – पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एंशिंट इंडिया (कलकत्ता, 1953)।
4. जयसवाल, के0पी0 – हिन्दू पालिटी।
5. वी0ए0 स्मिथ – अरली हिस्ट्री ऑफ इंडिया (आक्सफोर्ड 1904)।
6. सहाय, शिवस्वरूप – प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीलाल पब्लिकेशन, 2004।
7. सेंगर, शैलेन्द्र – प्राचीन भारत का इतिहास, अटलाटिक पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली, 2005।